RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-08
August-2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI: https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i08.040

# तीन पीढ़ियों की संघर्ष कथा : दोहरा अभिशाप

बृज किशोर वशिष्ट

एसोशिएट प्रोफेसर, मोतीलाल नेहरू कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय

**ARTICLE DETAILS**

**Article History**
*Published Online:* 17 August 2020

**Keywords**
*दलित, स्त्री, जाति, छूआछूत.*

***Corresponding Author**
*Email: bkv_70[at]yahoo.com*

**ABSTRACT**

*कौसल्या बैसंत्री कृत 'दोहरा अभिशाप' (1999) हिंदी में किसी महिला दलित साहित्यकार की पहली आत्मकथा है। यह आत्मकथा इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि लेखिका ने अपने जीवन के 68 वर्ष बीत जाने के बाद इसे लिखना आरंभ किया। नागपुर रेलवे स्टेशन के पास खलासी लाइन नाम की बस्ती में कौसल्या जी का जन्म 8 सितंबर, 1926 को हुआ। इससे पहले लेखिका के पास समाज सेवा के अनुभव तो थे लेकिन लिखने का कोई पूर्व अनुभव उन्हें नहीं था। उन्हें एक साथ तीन चुनौतियों से से पार पाना था - एक, पति के साथ चार दशक से भी अधिक बिताने के बाद, तरह-तरह की यातना सहने के बाद अपने आपको यह विश्वास दिलाना था कि वे किसी भी तरह उससे कम नहीं हैं। दो, विभिन्न जातियों में विभाजित समाज के कुंठाग्रस्त संयोजन में अपनी बराबरी सिद्ध करनी थी और तीन, साहित्य में अपनी आत्मकथा के माध्यम से स्वीकार्यता हासिल करनी थी। कुछ सीमाओं के बावजूद वे काफी हद तक इन तीनों मोर्चों पर सफल रही हैं।*

कौसल्या बैसंत्री कृत 'दोहरा अभिशाप' (1999) हिंदी में किसी महिला दलित साहित्यकार की पहली आत्मकथा है। इस आत्मकथा में जो बात उभरकर आई है वह है पुरुषसत्तात्मक सामंती मूल्यों पर टिके समाज के खिलाफ तीन पीढ़ियों की महिलाओं का संघर्ष। लेखिका, उसकी माँ और नानी तीनों जीवन भर आर्थिक स्वावलंबन और अपनी अलग पहचान के लिए लड़ती हुई दिखाई देती हैं। तीनों का जीवन भारतीय समाज में स्त्री दासता के विरुद्ध मिसाल माना जा सकता है। तीनों महिलाओं में औरत के सर्वश्रेष्ठ रूप को देखा जा सकता है। प्रो. सुधा सिंह के अनुसार, "कहानी नानी की बनी या फिर अम्मा की। ये दोनों ही स्त्रियाँ शक्तिशाली चरित्र के रूप में उभरी हैं। आजी, अजोबा पर भारी पड़ती हैं और माँ, पिता पर। दोनों ही स्त्रियाँ स्वतंत्र निर्णय और सूझ-बूझ की धनी हैं। विशेषकर लेखिका की माँ में अपार धैर्य और समाज के सामने डटे रहने का साहस है।" [1] वास्तव में स्त्री का संघर्ष केवल उसका संघर्ष नहीं होता है बल्कि वह पूरे समाज का संघर्ष होता है। प्रसिद्ध लेखिका नासिरा शर्मा ने स्त्री की विशेषताएँ बताते हुए लिखा है कि, "औरत ईमानदार, निष्ठावान, कर्मठ, धैर्यवान और बलिदान करने वाली ऐसी जीव है जिसका मुक़ाबला दुनिया का कोई दूसरा प्राणी नहीं कर सकता है।" [2]

अपनी नानी, जिन्हें लेखिका 'आजी' कहती है, के जीवन के दुखों का लेखिका ने बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। आजी का बाल विवाह हो गया था और छोटी अवस्था में ही उनके पति का देहांत हो गया था। उनके समाज में विधवा के पुनर्विवाह की अनुमति थी, जिसे 'पाट' कहा जाता था। आजी का 'पाट' मोडकूजी से हो गया जो पहले से ही शादीशुदा थे। "मोडकूजी शादीशुदा थे और उनके एक लड़का और लड़की थी। पत्नी जीवित थी और उनके साथ ही रह रही थी।" [3] आजी बहुत खूबसूरत थी और मोडकूजी सुंदरता में उनके एकदम उलट थे। वे शराब पीकर आजी पर रोज़ अत्याचार किया करते थे। आजी के तीन बच्चे एक लड़का, दो लड़की हुए। एक दिन मोडकूजी ने बिना बात आजी को बहुत मारा। आजी ने अपने बच्चों को लेकर नागपुर जाने का निर्णय किया ताकि मेहनत-मजदूरी करके अपने बच्चों को स्वयं पाल सकें। रास्ते में एक बेटी सरस्वती का देहांत हो गया। आजी ने रोते-रोते अपने बेटे श्रावण के साथ मिलकर उसको दफना दिया। नागपुर पहुँचकर उन्होंने मेहनत-मजदूरी करके अपने बच्चों का लालन-पालन किया। लेकिन कभी किसी के सामने अपने स्वाभिमान से समझौता नहीं किया। आजी का यही स्वाभिमानी स्वभाव उनके सभी बच्चों में भी स्वाभाविक रूप से आ गया।

लेखिका की माँ 'भागेरथी' का चरित्र इस आत्मकथा में विशेषरूप से उभरकर आया है। संघर्ष का जो माद्दा माँ में है वही अन्य किसी भी पात्र में नहीं है। वह जीवन की हर समस्या से जूझना जानती है। लेखिका का स्वयं का चरित्र भी माँ के सामने पूरी तरह से विकसित नहीं हो पाया है। जिस स्त्री स्वाभिमान को लेखिका उभारना चाहती है वह पूरी तरह माँ के चरित्र में ही प्रतिबिम्बित हो पाया है। वह अपने पति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करती है। उन्होंने अपने

RRIJM 2015, All Rights Reserved

बच्चों को पढ़ाया। गुलाम भारत में दलित निर्धन परिवार के बच्चों का उच्च शिक्षा पाना एक सपना था और इस सपने को लेखिका की माँ ने अपने बच्चों के माध्यम से पूरा किया। इसके लिए माँ को समाज में हर तरह की प्रताड़ना का शिकार होना पड़ा लेकिन उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। प्रभा खेतान समाज में स्त्री की दशा का वर्णन करते हुए लिखती हैं, "स्त्री दलित जाति की हो या गैर-दलित जाति की स्त्री मात्र के कुछ अनुभव ऐसे हैं, जो जाति या वर्ग की दूरियों के बावजूद इस सीमा-रेखाओं से परे हैं, प्रत्येक स्त्री पुरुष द्वारा जिन्स या जानवर की तरह प्रयुक्त होने से पीड़ित है। सारी दुनिया में स्त्री की स्थिति एक-सी है। प्रत्येक जाति की स्त्री के पास पुरुषों की तुलना में काम के घंटे अधिक हैं। वह श्रम के बाज़ार में सस्ते श्रम के लिए अधीनस्थ स्थिति में रहने के लिए बाध्य है।" [4] लेखिका अपने जीवन के आरंभिक दिनों से ही समाज सेवा के क्षेत्र में सक्रिय थी। जातिगत भेदभाव को मिटाने की दिशा में होने वाले विविध कार्यक्रमों में भाग लेती थी। ऐसे ही एक कार्यक्रम में उनके अपने भावी पति देवेंद्र कुमार से भेंट हुई, जिसकी परिणति बाद में विवाह के रूप में हुई। लेखिका का पारिवारिक जीवन बेहद तनावपूर्ण वातावरण में बीता। स्त्री और पुरुष के संबंधों पर विचार करते हुए प्रसिद्ध लेखिका अनामिका का कथन है कि, "....स्त्री शक्ति है - सृजन की, श्रम की संबंधों की, संवेदना की। स्त्री शक्ति है पुरुष की। और इस शक्ति से जिसे खतरा होता है वह स्त्री दमन करने की सोचता है। परंतु पुरुष को स्त्री की शक्ति के साथ खड़ा होना चाहिए क्योंकि वह स्त्री सदैव उसके साथ खड़ी है हर परिस्थिति में हर जगह पर। अतः हमे स्त्री की भावना को समझना चाहिए। " [5] स्पष्ट है कि कौसल्या जी में तो उपर्युक्त सभी गुण मौजूद हैं लेकिन उनके पति ही सहजीवन के भाव से रहित हैं। उनके अनुसार उनके पति एक लापरवाह और गैरजिम्मेदार आदमी थे। पति के कर्तव्य पर विचार करते हुए महात्मा गांधी का कथन है, "पति का धर्म है कि पत्नी को अपनी सच्ची सहधर्मिणी और अर्धांगिनी माने, उसके दुख से दुखी हो और उसके सुख से सुखी। पत्नी पति की दासी कदापि नहीं है, न वह पति के भोग की ही सामग्री है। जो स्वतंत्रता पति अपने लिए चाहता है, ठीक वही स्वतंत्रता पत्नी को भी होनी चाहिए। जिस सभ्यता में स्त्री जाति का सम्मान नहीं किया जाता उस सभ्यता का नाश होना निश्चित है।" [6] आत्मकथा की भूमिका में कौसल्या जी लिखती हैं, "मेरे उच्च शिक्षित पति, लेखक और भारत सरकार में उच्च पद पर सेवारत रहे। उन्हें ताम्रपत्र भी मिला और स्वतन्त्रता सेनानी की पेंशन भी। पति ने कभी मेरी कदर की बल्कि रोज़-रोज़ के झगड़े, गलियों से मुझे मजबूरन घर छोडना पड़ा और कोर्ट में केस करना पड़ा।" [7] लेकिन इस पारिवारिक तनाव का लेखिका ने अपने बच्चों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ने दिया। शिक्षा की जो लौ उनकी नानी ने प्रदीप्त की थी उसे उन्होंने अपने बच्चों तक सफलतापूर्वक पहुंचाया। सब बच्चे पढ़-लिखकर अच्छे ओहदों पर पहुंचे।

अपने पति की सामंती प्रवृत्ति का वर्णन करते हुए लेखिका का कथन है कि, "देवेन्द्र कुमार को पत्नी सिर्फ खाना बनाने और उसकी शारीरिक भूख मिटाने के लिए चाहिए थी। दफ्तर के काम और लिखना यही उसकी चिंता थी। मुझे किसी चीज़ की जरूरत है, इस पर उसने कभी ध्यान नहीं दिया।" [8] यहाँ इस बात का उल्लेख कारण आवश्यक प्रतीत होता है कि पूरी आत्मकथा में वे ब्यौरे अधिक विश्वसनीय जान पड़ते हैं जिनमें लेखिका अपने पति के अत्याचारों को चित्रित करती है। एक परंपरा भीरु स्त्री के रूप में चालीस साल का गृहस्थ जीवन बिताने के बाद लेखिका पति के खिलाफ उठ खड़ी होती है। आक्रोश तो उसके भीतर पहले से ही है लेकिन उचित अवसर पा बाहर आ सका है। उनके भीतर की स्त्री का आंतरिक विक्षोभ अंदर हलचल मचा देने के बाद मुखर होकर बाहर आ पाया है। लेखिका आत्मविश्वास से उत्पन्न साहस को अपने भीतर समेटे हुए है। परिधि पर खड़ी स्त्री को उसने केंद्र में लाने का साहस दिखलाया है।

स्त्री विमर्श या दलित विमर्श में यह आवश्यक माना गया है कि मुक्ति की दिशा में पहला कदम खुद को उठाना पड़ता है। इसकी पहल व्यक्ति के भीतर से होनी चाहिए। अगर किसी का मन दासता की भावना से मुक्त हो गया तो बाहरी मुक्ति के लिए वह अपनी समस्त ऊर्जा लगा देगा। लेखिका का मन प्रकाशवान मन है। वह स्त्री मुक्ति का सही अर्थ समझ गई है। पुरुषसत्तात्मक समाज में समानता के अधिकार को पाना उसका सपना है। आर्थिक स्वतन्त्रता का जो आधार लेखिका की नानी और माँ अपने श्रम के बूते पा सकीं दुर्भाग्यवश लेखिका अपने जीवन में वह नहीं पा सकी। आर्थिक रूप से स्वावलंबी न होने के कारण वह जीवन भर अपने पति की प्रताड़ना का शिकार होती रही। लेकिन अंततः पति की लगातार उपेक्षा से आहत होकर स्त्री अस्मिता की भावना उसके भीतर पैदा हुई और वह पति की सामाजिक श्रेष्ठता की भावना के विरोध में खड़ी होने का साहस कर सकी। कौसल्या जी लिखती हैं, "बहुत अत्याचार होने पर मैंने कोर्ट में देवेन्द्र कुमार पर केस दायर दिया। आज दस वर्ष से कोर्ट में केस अटका पड़ा है। मुझे हर माह 500 रुपए मेंटेनेंस के मिलते हैं। देवेन्द्र कुमार इसे देने में भी देर लगाता है, चार-चार महीने नहीं भेजता। न्यायपालिका भी लगता है स्त्री के लिए ज्यादा फिक्र नहीं करती।" [9]

इस आत्मकथा के माध्यम से उत्तर भारत और महाराष्ट्र के दलित समुदाय के मूलभूत अंतर को रेखांकित किया जा सकता है। जो स्वाभिमान की चेतना आज़ादी के

पहले मराठी दलित समाज में आ गई थी वह आज़ादी के इतने सालों बाद भी उत्तर भारत में अभी तक नहीं आ पाई है। शिक्षा के प्रति जागृति इसका सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है। निर्धन और कई मानवीय दुर्गुणों से युक्त होने पर भी लेखिका के माँ-बाप शिक्षा के महत्त्व को समझते थे। उन्होंने मेहनत-मजदूरी करके अपने बच्चों को यथासंभव पढ़ाने का प्रयास किया। शिक्षा के प्रति इस सजगता का एक कारण डॉ. भीमराव अंबेडकर की प्रेरणा को माना जा सकता है। शिक्षा के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए 1942 में दलित वर्ग की महिलाओं को संबोधित करते हुए डॉ. अंबेडकर ने कहा था, "आप लोग साफ-सुथरा रहना सीखिए और सभी कुरीतियों से दूर रहिए। आप अपने बच्चों को पढ़ाइए। आप धीरे-धीरे उनके मन में महत्वाकांक्षा जगाइए। वे महान बने ऐसे संस्कार दीजिए। उनके मन की हीनता को नष्ट कीजिए।" [10] कौसल्या जी ने इस विषय में लिखा है कि, "माँ-बाबा को सबकी पढ़ाई का खर्चा उठाने में दिक्कत पड़ती थी, फिर भी उन्होंने हमें पढ़ाना जारी रखा। उन्होंने बाबा साहब अंबेडकर का कस्तूरचंद पार्क में भाषण सुना था कि अपनी प्रगति करना है तो शिक्षा प्राप्त करना बहुत जरूरी है। लड़का और लड़की दोनों को पढ़ाना चाहिए। माँ के मन पर इसका असर पड़ा था और उन्होंने हम सब बच्चों को पढ़ाने का निश्चय किया था, चाहे कितनी ही मुसीबतों का सामना करना पड़े।" [11] यहाँ यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि डॉ. अंबेडकर अपने समाज के लिए जितना शिक्षा के महत्त्व को समझते थे उतना कोई दूसरा चिंतक नहीं समझ सका।

लेखिका ने समाज में विद्यमान छूआछूत की भावना का कई स्थलों पर वर्णन किया है। स्कूल में होने वाले छुआछूत के वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ऐसी एक घटना का वर्णन करते हुए उनका कथन है, "मैं अस्पृश्य हूँ, इसका मुझे बहुत दुख होता था और मैं हीनता महसूस करती थी। कोई मुझे मेरी जाति न पूछ बैठे, इसका मुझे सदैव डर लगा रहता था। इसलिए मैं अकेली खाने की छुट्टी में या स्कूल शुरू होने के पहले एक ओर बैठी रहती थी।" [12] मंदिर में अछूत प्रवेश पर निषेध पर उन्होंने लिखा है कि, "गणपति के मंदिर में सिर्फ ब्राह्मण या ऊंची जाति वाले लोग ही जाते थे। अस्पृश्यों का मंदिर में प्रवेश नहीं था। मैं और मेरी बहन आते-जाते लोगों को पूजा-पाठ करते देखती थीं। पंडितजी नारियल, गुड आदि का प्रसाद लोगों को देते थे। प्रसाद के लालच में मैं और मेरी बहन, जब लोग नहीं रहते तब जाकर गणपति जी की पाँच बार प्रदक्षिणा करती थीं और गनती बजाती थीं। लोगों को देखकर हम भी वैसे ही करती थीं और प्रसाद लेकर जल्दी भाग जाति थीं। वहाँ के पुजारी को हमारे ऊपर शक नहीं हुआ। नहीं तो मार पड़ती।" [13]

जैसा कि हम जानते हैं कि लेखिका के पास इससे पहले लिखने का कोई अनुभव नहीं है, यह तथ्य एक स्तर पर इस आत्मकथा की सीमा के रूप में उभरता है तो दूसरे स्तर पर, प्रोफेशनल लिक्खाड़ की घुमावदार बातों की जगह इसमें भाषा और कथ्य दोनों स्तरों पर सरलता है। यही सरलता इस पुस्तक को विशिष्ट बनाती है। अपनी और अपने समुदाय की नकारात्मक बातों को वर्णित करते समय लेखिका ने जिस सादगी का परिचय दिया है वह पाठक को अपनी तरफ बरबस आकर्षित करता है। उदाहरण के लिए इस कथन को देखा जा सकता है, ""मेरा जन्म 8-9-26 को इस खलासी लाइन बस्ती में हुआ था। बड़ी बहन जनाबाई के बाद लगातार एक भाई और दो बहनों की मृत्यु हो गई थी इसलिए आजी और माँ ने शिवजी भगवान के मंदिर के बाहर खड़े होकर प्रार्थना की और भगवान से मन्नत मांगी कि अगर मैं दस वर्ष की हो जाऊँगी और मेरे बाद जो बच्चे होंगे वो जीवित और स्वस्थ रहेंगे तो वह शिवजी के मंदिर में जाकर बकरे की बलि देगी और मेरे वज़न के बराबर चावल और गुड चढ़ाएगी। तब बलि प्रथा हमारे अस्पृश्य समाज में चल रही थी। माँ और आजी ने मंदिर के बाहर से ही भगवान से लंबी आयु के लिए प्रार्थना की थी क्योंकि अछूतों को मंदिर में जाने की मनाही थी।[14]

दलित साहित्यकार अक्सर अपने लेखन में सवर्णों के व्यक्तिगत अच्छे संदर्भों का उल्लेख करने से बचते हैं। वे सवर्णों के मात्र उन्हीं प्रसंगों को प्रमुखता से लिखते हैं जिनमें सवर्णों ने रूढ़िग्रस्त जातिगत बंधनों के अनुसार कुछ कृत्य किया होता है। इस आत्मकथा की लेखिका का विवेक ऐसे मामलों सजग है। वे कई स्थलों पर सवर्णों का सकारात्मक वर्णन भी करती हैं। इससे उनकी आत्मकथा की प्रामाणिकता बढ़ गई है। एक उदाहरण दृष्टव्य है, "खलासी लाइन की जमीन एक पटेल की थी। वह जाति का जयसवाल बनिया था। वह बहुत शांत और शरीफ आदमी था। जमीन उसने इस बस्ती के लोगों को बेच दी थी। यहाँ के रहने वाले ज़्यादातर अछूत थे। गरीब, अनपढ़ और मजदूर थे। उसने इन्हें जमीन उधार पर बेच दी थी और उनसे हर महीने थोड़े-थोड़े रुपए लेता था। ज्यादा सख्ती नहीं करता था। जितना पैसा कोई दे देता था, वह ले लेता था।" [15]

साहित्य के उद्देश्य पर विचार करते हुए राजेन्द्र यादव का कथन है कि, "साहित्य का एक बड़ा उद्देश्य या सार्थकता यह भी है कि वह आपके अनुभव, आपकी संवेदना, आपकी सेन्सेबिलिटी को भी विकसित करता है, दूसरों से भी जोड़ता है। मैं जो महसूस करता हूँ उसे प्रमाणित तभी कर पाऊँगा जब आप भी उसी तरह का अनुभव करते हों, सोचते हों। तभी उसका सम्प्रेषण भी होगा। यही उसकी संप्रेषणीयता भी है, यही उसकी प्रामाणिकता भी है।" 16 निष्कर्षतः यह कहा जा सकता

है कि कौसल्या बैसंत्री की आत्मकथा में वह ताप और तनाव मौजूद नहीं है जो किसी दलित लेखक की कलम में होता है। लेकिन यह आत्मकथा तीन महिलाओं के जीवन संघर्ष को बखूबी चित्रित करती है। इस पुस्तक में पुरुषसत्तात्मक समाज के खिलाफ अभिव्यक्त आक्रोश को स्पष्ट रेखांकित किया जा सकता है। लेखिका की नानी, माँ और वह स्वयं सामंती मूल्यों के विरुद्ध लड़ते हुए अपना जीवन बिताती हैं। लेखिका ने दलित जीवन की समस्याओं को अपनी कथा के माध्यम से चित्रित किया है और इस कथा में जो अंतर्दृष्टि प्रवाहित हो रही है वह डॉ. अंबेडकर से प्रेरित है। लेखिका का स्पष्ट मत है कि सामाजिक परिवर्तन में स्त्री को भी पुरुष वर्ग की सहयोगी बनकर काम करना चाहिए। हालांकि कई स्थलों पर दलित जीवन के प्रसंगों में विस्तार की आवश्यकता की कमी खटकती है। जीवन में चालाकी और सादगी दो पद्धतियाँ हैं। सादगी के साथ जीवन जीना एक मुश्किल काम है। चालाकी दिखाकर मनुष्य बदला लेता है। चालाकी दिखाकर अगर हम जीत भी जाएँ तो भी भी वह जीत हार के समान होती है। कौसल्या जी ने अपने जीवन में चालाकी करना सीखा ही नहीं है। वे अपनी आत्मकथा में न चालाकी भरा खेल ही खेलती हैं और न किसी को पराजित करने का भाव ही उनके मन में है। वे तो भाषा और भाव की सादगी से लगातार जीतती प्रतीत होती हैं। एक भी स्थल पर उनकी आत्मकथा असामान्य नहीं लगती। सब कुछ सहज और वास्तविक लगता है। उनकी रचना में पाठक को अपने शिल्प कौशल से आक्रांत करने का भाव नहीं है। अभिव्यक्ति जहां सादगी भरी है वही संवेदना के स्तर पर समाज के तिक्त अनुभवों के वर्णन हैं। हालांकि यह उनकी पहली रचना है परंतु भाषा और कथ्य का सादगी भरा संतुलन उल्लेखनीय बन पड़ा है।

## संदर्भ


[1]. http://sudha2636yahoocom.blogspot.com/2018/05/blog-post.html
[2]. औरत के लिए औरत, नासिरा शर्मा, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृष्ठ 6
[3]. दोहरा अभिशाप, कौशल्या बैसंत्री, परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, 1999, पृष्ठ 18
[4]. स्त्री अस्मिता : साहित्य और विचारधारा, संपादक: जगदीश्वर चतुर्वेदी/सुधा सिंह, पृष्ठ 341
[5]. स्त्री मुक्ति-साझा चूल्हा, अनामिका, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृष्ठ 9
[6]. विवाह समस्या अर्थात स्त्री जीवन, महात्मा गांधी, सरस्वती सदन प्रकाशन, प्रयाग,1934, पृष्ठ 72
[7]. दोहरा अभिशाप, कौशल्या बैसंत्री, भूमिका से उद्धृत, पृष्ठ 7
[8]. वही, पृष्ठ 104
[9]. वही, पृष्ठ 106
[10]. और बाबा साहेब अंबेडकर ने कहा.... (खंड 2), अनुवाद/संपादन एल. जी. मेश्राम विमलकीर्ति, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृष्ठ 351
[11]. दोहरा अभिशाप, कौशल्या बैसंत्री, पृष्ठ 47
[12]. वही, पृष्ठ 41
[13]. वही, पृष्ठ 46
[14]. वही, पृष्ठ 28
[15]. वही, पृष्ठ 30
[16]. मेरे साक्षात्कार, राजेन्द्र यादव, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृष्ठ 47


RRIJM 2015, All Rights Reserved 